मनीषा झा की चार कविताएं

(1)

समय के रंग

वहाँ सूर्य था अपनी किरणों के साथ
ईमानदारी में सबके लिए थी रोशनी
पारदर्शिता का स्थायी निवास था वहां
जो भीतर था वह दिखाई पड़ता था बाहर भी

गर्दन उठाने पर जो चाँद नज़र आता था
उसमें दिखता धब्बा चाँद की नियति थी
मगर इससे क्या
धरती के लिए वह मधुर और शीतल था

उस ओर मृगमरीचिका थी
चमक देख कर ललचाया मन कुलांचे भरता था
लपकता था हिरण की तरह
एक ओर अंतहीन दौड़ थी वहाँ दूसरी ओर
हाथ न आने की निर्मम चालाकी

देखा गया है
कि हर मौसम के अपने -अपने फूल होते हैं
कोई बसंत में रहता है सहज तो कोई बरसात में
कोई सर्दी में खिलता है निश्चिंत तो कोई गर्मी में
कुछ होते हैं जिन्हें ऋतुओं के बदलने से
खास फ़र्क नहीं पड़ता वो होते हैं सदाबहार

सक्षम होते ही चिड़िया का बच्चा
उड़ जाता है माँ का घोंसला छोड़कर
ढूंढ़ता है अपनी राह
उड़ सकने की धुन में

सहेजता है आत्मविश्वास
फिर एक दिन आती है आंधी साथ में तबाही
तो क्या वह सोचता है
बचपन की सुरक्षा और लौटने के बारे में

उस समय की बात है
दुनिया एक थी और जीने की आदतें अनेक
उन अनेक आदतों ने दुनिया को दिया था वैविध्य
वैविध्य एक जाल था जिसमें फंसा रहता था मनुष्य
रहने लगा था व्यस्त और बेचैन।

(2)

बिरवा

चाहिए तो बहुत कुछ
एक मुकम्मल जीवन में
सभ्यता की बढ़त परवान पर हो जब
मेरी खुशी फिलहाल
एक बिरवे में है जो अभी-अभी फूटा है
मुझे देखना यह नहीं कि यह कितना ऊपर जाएगा
बल्कि देखना है गौर से
कितना हरा होता है यह।

(3)

मेघ जैसा जीवन

आया मानसून का मेघ
तो निहाल हो गई नदी
बेहाल थी वह भी
जेठ की गरमी में तपकर
जैसे तपता है
हर जेठ में
सर्वहारा।

(4)

पानी का पता

पानी का पता समुद्र से नहीं
उन झरनों से पूछो
जो प्यास की तड़प सुनकर
दौड़ जाते हैं व्याकुल होकर
खाया करते हैं अक्सर
चट्टानों की चोट
फिर भी जो लौटते नहीं पीछे
रुकते भी नहीं
न लेते हैं अंबर की ओट

पागलपन और क्या है
उस पानी से पूछो जो बहता है
हाहाकार बन उमड़ता है
कभी सागर की सीमा में
हरहरा कर बढ़ जाता है
कभी झरने के असीम पथ पर
रस बन बरसता है
शब्दों के शरीर से
आँसू बन झरता है
आँखों के रास्ते

पागलपन का पता पानी से पूछो
पूछो कि पागलपन नहीं होता अगर
तो कितना बोझिल होता जीवन।

*(**लेखकीय परिचय:** मनीषा झा चर्चित कवयित्री हैं। वर्तमान में उत्तर बंग विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल के हिंदी विभाग में प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।)*

***